पुस्तक का नाम—भगवान महावीर के मनोहर उपदेश

संयोजक—मनोहर मुनि 'कुमुद'

प्रेरक—श्री विजय मुनि जी 'संगीतप्रेमी'

पद्यानुवाद—मनोहर मुनि जी 'कुमुद'

कम्पोज—किरण प्रकाशन, ४-८-४९४ गौलीगुड़ा, हैदरावाद

प्रिंटिंग—रघु मोहन प्रिण्टर्स, इडनवाग, हैदरावाद

प्रकाशक—श्रीमती लीलम प्राणलाल संघवी चैरिटेवल ट्रस्ट

प्रथम आवृत्ति—दो हजार २०००

वीर निर्वाण सं०—पच्चीस सौ दो २५०२

मूल्य—सदुपयोग

प्रकाशकीय

पूज्य महाराज श्री जी का यह गाथा-चयन मुझे वहुत ही सुन्दर लगा है। महाराज श्री जी ने इस संग्रह का पद्यानुवाद करके इसे और भी सुन्दर, सुगम, सुवोध तथा हृदयाकर्षक वना दिया है। प्रत्येक मुमुक्षु के लिए यह पठनीय है। इसके प्रकाशन में मैं निमित्त मात्र वना हूँ। यह मेरा परम सौभाग्य है। श्रीमती लीलम प्राणलाल संघवी की मंगल स्मृति में यह प्रकाशन उपस्थित किया जा रह है। जन-मन इससे लाभान्वित होगा ! ऐसी आशा है।

प्राणलाल संघवी
अध्यक्ष
स्थानकवासी जैन संघ
हैदरावाद

जिसने जगति में बिखराया,

सद्गुण का सुवास !

इस धरती पर रहा सदा ही,

स्वर्ग उसी के पास ।।

सौहार्द, सेवा और करुणा—

की प्रतिमा एक साकार ।

इस धरती से ऊपर जिसका,

स्वर्गलोक से प्यार ! !

श्रीमती लीलम प्राणलाल संघवी

समर्पित

करता हूँ

अहिंसा

और

सत्य

के

पुजारी

प्रत्येक नर और नारी

के

कर कमलों

में

मनोहर मुनि 'कुमुद'

आगम वाटिका के सुमन,

मैं सुकुमार लाया हूँ ।

जीवन के लिए मैं इक,

नया शृंगार लाया हूँ ॥

पदों में बान्ध कर गौतम–

के दिल का प्यार लाया हूँ ।

विश्व के वास्ते मैं इक,

नया उपहार लाया हूँ ॥
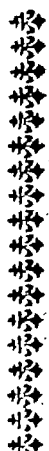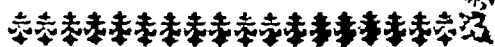
अहिंसा व शान्ति के अवतार तीर्थंकर भगवान महावीर

भगवान महावीर

मनोहर मुनि 'कुमुद'

भगवान महावीर का जन्म ईसवी सन् से ५९९ वर्ष पूर्व विहार के वैशाली महानगर के उपनगर क्षत्रियकुण्ड ग्राम में हुआ था। आप के पिता का नाम सिद्धार्थ था। आप वैशाली गणतन्त्र के शासक राजा थे। भगवान महावीर की माता का का नाम त्रिशला था। जन्म से पहले महावीर की माता ने १४ महास्वप्न देखे थे। यह एक प्रकार से धरती पर एक महान् आत्मा के अवतरण की सूचना थी। महावीर का जन्म नाम वर्धमान था। आपके जन्म लेते ही राज्य में सब तरह की वृद्धि तथा उन्नति होने लगी। इसलिए माता-पिता ने आपका नाम वर्धमान रखा। आपके चाचा का नाम सुपार्श्व था। आपके एक वड़े भाई नन्दिवर्धन थे। जन्म से ही वड़े संयत, मौन तथा गम्भीर रहते थे। आपका मन रंग भवनों के भोग विलास में विल्कुल नहीं लगता था। आप महल को एक पिजरा समझते थे और अपने को उस पिजरे का एक वन्दी पक्षी मानते थे। आप इस मोह-पिजरे से निकलने के लिए सदैव आतुर रहते थे। आपके जीवन के अट्ठाईस वसंत इसी चिन्तन में गुजर गये। अनिच्छा होते हुए भी केवल

अपने प्रिय माता-पिता के मनः सन्तोष के लिए उन्हों नें विवाह को स्वीकार किया ! किन्तु विवाह उनके लिए वन्धन नहीं वना। उन की पत्नी का नाम यशोदा था। एक पुत्री के आप पिता भी वने। जिसका नाम प्रियदर्शना था। अठ्ठाईस वर्ष की उमर में आपके माता-पिता स्वर्ग सिधार गये। आप घर छोड़ने को तैयार हो गये। वड़े भाई नन्दिवर्धन ने उन्हें फिर रोका। किसी तरह २ वर्ष के लिए वे फिर रुक गये। आखिर ३० वर्ष के भरपूर यौवन में वे घर छोड़ कर सन्यासी (साधु) हो गये। उन्हों ने शरीर का वस्त्र तक भी अपने पास नहीं रखा। साढ़े वारह वर्ष तक घोर तप किया। दुष्टों और राक्षसों ने आप को भयंकर कष्ट दिये। किन्तु आप अपने संयम-पथ पर हिमालय की तरह अडिग रहे। इसी से आप महावीर के नाम से प्रख्यात हुए। अपने इतने लम्वे तपस्वी जीवन में आप प्रायः मौन ही रहे और केवल ३४९ दिन ही भोजन ग्रहण किया। आपका अधिकांश समय ध्यान और समाधि में ही वीतता था। एक दिन आप ऋजुवालिका नदी के किनारे शालिवृक्ष की शीतल छाँह तले गोदुहासन की मुद्रा में आत्मध्यान में लीन वैठे थे कि आपके अन्तःकरण में ईश्वरीय आलोक हुआ। आपने व्रह्मज्ञान को पा लिया। आप केवलज्ञानी वन गये। आप आंखें वन्द कर के भी अनन्त जगत को हस्त-रेखा की तरह अपनी आत्मा के दिव्य ज्ञान से देखने लगे। आप सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वन गये। इस के वाद आप ने अपना प्रचार आरम्भ किया। उस समय भारत के धार्मिक उपवन में पतझड़ था। चारों ओर कांटे ही कांटे

विखर रहे थे। हिंसा का जोर वढ़ रहा था। हिंसक यज्ञों में निरीह पशुओं का रक्त वह रहा था। शूद्रों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार हो रहा था। मानव समाज का भाग्य धर्म के ठेकेदारों के हाथ में था। नारी को कोई भी स्वतन्त्रता नहीं थी। वह विलास का एक खिलौना समझी जाती थी। भगवान-महावीर की करुणाशील आत्मा यह सव अत्याचार और पाखण्ड को देख न सकी। भगवान महावीर की आँखें छलक उठीं और हृदय रो पड़ा। उन्होंने शोषण, अत्याचार तथा पशुवलि के विरोध में अपना आन्दोलन आरम्भ किया। भारत के कोने कोने में पद-यात्रा करके आपने अपने सर्वप्रिय सिद्धान्त 'अहिंसा' का प्रचार किया। हिंसा के विरुद्ध आपका अभियान ३० वर्ष तक चलता रहा। वड़े वड़े धुरन्धर विद्वानों को भी आपने अपनी मोहिनी शक्ति से मोहित कर दिया और वे आपके शिष्य वन गये। आप ने अपने जीवन में चोदह हजार पुरुषों को दीक्षित करके साधु वनाया और ३६ हजार वहनों को संयम का व्रत देकर साध्वी वना दिया। लाखों लोगों को अहिंसा आदि अणुव्रतों की प्रतिज्ञा दे कर उन्हें पवित्र एवं नैतिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दी। भगवान महावीर ने ऐसे सद्गृहस्थ को श्रावक और सद् गृहिणी को श्राविका कहा। इस प्रकार साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका के रूप में उन्हों ने एक विशाल संघ तैयार किया। इस संघ को तीर्थ कहा जाता है। तीर्थ के संस्थापक को तीर्थंकर कहते हैं। भगवान महावीर जैन धर्म के चौवीसवें तीर्थंकर थे। वहत्तर वर्ष की आयु में पावापुरी में कार्तिक

अमावस्या की मध्य रात्रि को उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया। बेशक अहिंसा का सूर्य अस्त हो गया। किन्तु याद रखिये कि आकाश का सूर्य अस्त होने पर अपने पीछे अन्धकार छोड़ जाता है किन्तु महापुरुष दुनिया से अस्त होकर भी अपने पीछे अपने सिद्धान्तों का प्रकाश छोड़ जाता है। हमें चाहिए कि भगवान महावीर के उच्चतम जीवन सिद्धान्तों के प्रकाश में अपने लिए सुख और शान्ति के मार्ग की खोज करें। वस्तुतः तभी हमारे आयोजन सफलता से अलंकृत होंगे।
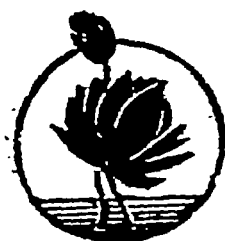
निर्वाण कैसे ?

ज्ञान के आलोक में
मोह दूर भागता है।
जीवन में परम सुखकर
वैराग्य जागता है ॥

वैराग्य से ही भक्ति में
प्रवीण होता है।
आत्मा निज सुख में
फिर लीन होता है ॥

ज्ञान के सरोवर में जब
आत्म - स्नान होता है।
दुख, विषाद, शोक का
अवसान होता है।

मन, विमल, शान्त, शुभ्र

जब परिपूत होता है।

आत्मा में आनन्द तब

उद्भूत होता है॥

कर्म से मुक्त जीव

केवल ज्ञान पाता है।

महावीर की तरह

वह निर्वाण पाता है॥

महापुरुष और उनका ज्ञान सब के लिए होता है

महापुरुष किसी एक जाति, पंथ, सम्प्रदाय व समाज के नहीं होते। वे चान्द और सूर्य की तरह सब के होते हैं।

अन्धकारावृत्त-पथ पर अपने हाथ में दीपक ले कर चलने वाला पथिक दीपक के विखरते हुए प्रकाश को अपने ही पगों तक कभी सीमित नहीं कर सकता। उस समय उस मार्ग से गुजरने वाला कोई भी पथिक उस आलोक में अपनी राह खोज सकता है।

ठीक इसी तरह महापुरुषों के ज्ञान-दीप से कोई भी व्यक्ति अपने जीवन-पथ को आलोकित कर सकता है।
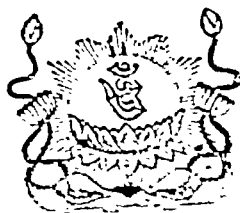
महापुरुषों का एक एक विचार

कोहेनूर हीरे के मूल्य से अधिक

मूल्यवान होता है

यह ऐसे ही अनमोल हीरों की

एक तिजोरी है ।

इसे सम्भाल कर रखिये

और

सूत्र ज्ञान की अविनय

तथा

आशातना के

पाप से

बचिये

भगवान महावीर

के

पाँचों कल्याणकों

के

पावन दिनों

में

इस पुस्तक

का

पाठ व स्वाध्याय

करना

कदापि

मत भूलिये

—:o:—

पाँच

कल्याणकों

के

शुभ दिन

च्यवन—आषाढ़ सुदि ६

जन्म—चैत्र सुदि १३

दीक्षा—मगसिर वदि १०

केवलज्ञान—वैशाख सुदि १०

परिनिर्वाण—कार्त्तिक अमावस्या

दीपावली की

मध्य रात्रि

यह सब स्वाध्याय है

धर्मवाणी को–

१. स्वयं पढ़ना

२. दूसरे को पढ़ाना

३. एकाग्र मन से सुनना

४. दूसरे को प्रेम से सुनाना

५. पढ़ने व सुनने के लिए प्रेरणा देना

६. एकाग्रचित्त हो पाठ करना

७. पढ़े व सुने हुए पर चिन्तन करना

८. आत्म-निरीक्षण करना

इसे कण्ठस्थ करलें-

१. स्कूल व कालेज के छात्र व छात्राएँ ।

२. जैन शिक्षा निकेतन के धर्मप्रिय

३. नवदीक्षित साधु व साध्वी ।

४. धर्मोपदेशक व प्रचारक ।

५. जैनागमों के अध्ययन के इच्छुक ।

६. श्रावक और श्राविकाएँ ।

७. अहिंसा और सत्य के जिज्ञासु ।

८. आत्म-ज्ञान के पिपासु

९. अध्यापक व प्राध्यापक

१०. पत्र व पत्रिकाओं के सम्पादक

११. प्राकृत भाषा के रसिक ।

१२. कवि व संगीतज्ञ ।

१३. अन्य कोई भी ।
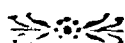
इसे आप अवश्य रखें–

१. घर की मेज पर

२. दुकान में

३. अपने हाथ के पर्स में

४. धर्म स्थान में

५. सामायिक के आसन में

६. कार्यालय में

यह पुस्तक आप का सबसे बड़ा—

१. मित्र है ।

२. बन्धु है ।

३. हितैषी है ।

४. शिक्षक है ।

५. मार्ग-दर्शक है ।

५. सहचर है ।

७. गुरु है ।

यह पुस्तक-

आनन्द का

नन्दनवन है

सुख का

कल्पवृक्ष है

ज्ञान की

गंगा है

सुसंस्कार की

मंजूषा है

शान्ति का

अमृतकलश है

सिद्धि की

कामधेनु है

मोह-मूर्च्छा के लिए

संजीवनी है

आध्यात्मिकता का

नन्दिघोष है

एक ललित अभिमत

परम श्रद्धेय श्री मनोहर मुनि जी 'कुमुद' इससे पूर्व भगवान महावीर के मनोहर उपदेशों का संग्रह तथा अर्थ प्रस्तुत कर चुके हैं। आपका गद्य भी अपनी काव्यमय, सरस एवं हृदयस्पर्शी शैली के कारण पद्य का प्रभाव रखता है। जब गद्य का ही ऐसा प्रभाव है, तब पद्य का तो कहना ही क्या?

इस ग्रन्थ में आपके सन्त रूप के साथ साथ कविरूप को देखकर पाठक प्रसन्नता और धन्यता का अनुभव करता है। उपदेश के वचनामृत कविता के माध्यम को अपनाकर विशेष प्रभावोत्पादक हो जाते हैं, यह एक निर्विवाद तथ्य और इतिहास-प्रमाणित सत्य है।

भगवान महावीर के उपदेशों का पाथेय लेकर जीवन पथ पर चलने वाला पथिक सदैव सुखी एवं निश्चिन्त रह सकता है। भगवान महावीर का निर्वाण बहत्तर वर्ष में हुआ था, इसलिए पूज्यवर्य श्री मनोहर मुनि जी 'कुमुद' ने इस संग्रह में केवल बहत्तर श्रेष्ठ उपदेशों का चयन हमारे कल्याण के लिए प्रस्तुत किया है।

आपकी शैली की सबसे बड़ी विशेषता है निराडंबरी भाषा जिसके कारण इन पद्यात्मक उपदेशों को कण्ठस्थ कर

लेना किसी के लिए भी सरल और सहज हो सकता है। इस आयोजन की उपादेयता भी इसी में निहित है।

मैं पूज्यवर्य श्री मनोहर मुनि जी 'कुमुद' को तथा इस आयोजन के प्रेरक पूज्यवर्य श्री विजय मुनि जी 'संगीतप्रेमी' को इस परमोत्कृष्ट आयोजन के लिए हृदय पूर्वक साधुवाद देता हूँ तथा इसे सुन्दर रूप में प्रकाशित करवा कर धन्य होने वाले सेठ श्री प्राणलाल संघवी को भी हार्दिक बधाई देता हूँ।

ललित पारिख
प्राध्यापक,
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद.

अपनी बात

आज से एक वर्ष पूर्व मैंने भगवान महावीर की वाणी के रूप में एक लघु संग्रह किया था। विविध सूत्रों में से इन गाथा—रत्नों का चयन किया गया है। इसमें अर्थ भी साथ दिया है। पाठक भली भान्ति गाथा के अन्तरंग में उतर कर इसमें आत्म-मज्जन कर आनन्द की अनुभूति कर सकता है। ज्ञानी के लिए तो कहीं भी क्लिष्टता व नीरसता नहीं हैं। संसार में ज्ञानी और विद्वान प्रायः कम ही होते हैं। जो हैं उनको किसी भी प्रेरणा व उद्‌वोधन की अपेक्षा नहीं रहती। वल्कि वे तो स्वयं संसार के लिए प्रेरक तथा उद्‌वोधक वनकर रहते हैं। आवश्यकता तो संसार के उन अन्धेरे मनों में दीपक जलाने की है जो सत्य से अभी वहुत दूर हैं। ठोकरें खाने वाले इस धरती पर असंख्य लोग हैं। उन्हें राह पर लाना इस जीवन का सवसे वड़ा सुकृत है। "भगवान महावीर के मनोहर उपदेश" यह पुस्तक मैंने इसी उद्देश्य से लिखी थी, कि जिन आँखों ने भगवान महावीर के सूत्र कभी नहीं पढ़े—वे पढ़ें जिन कानों ने ये उपदेश कभी नहीं सुने वे कान भी सुनें।

भारत में जैन धर्म का प्रचार प्रायः सव जगह है किन्तु बंगाल, उड़ीसा और आन्ध्र में अपेक्षाकृत कम है केवल राज-स्थानी और गुजराती भाईओं के इधर आकर वसने से जैनत्व

के कुछ स्वर इधर सुनाई देते हैं। किन्तु वे इतने मन्द हैं कि दूर तक उनकी गति नहीं। इधर जितना भी प्रचार हो वह कम ही है। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में हिन्दी के बड़े-बड़े ग्रन्थ काम नहीं दे सकते। इधर आवश्यकता है लघुकाय संग्रहों की। छोटे-छोटे मनोरञ्जक मनोहर एवं शिक्षा-प्रद उपदेशों की। यह पुस्तक मेरे इसी विचार-मन्थन का एक नवनीत पिण्ड है।

इस पुस्तक को और अधिक रोचक एवं आकर्षक बनाने के लिए इसका मैंने पद्यानुवाद किया है। प्रत्येक गाथा के भावार्थ का पद्यानुवाद कर दिया है ताकि पाठक के लिए यह अधिक से अधिक रुचिकर बने। यह रचना मेरे इसी संकल्प का सुफल है।

अधिक से अधिक लोग मेरे इस प्रयास से लाभान्वित हों। यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है—

मनोहर मुनि 'कुमुद'
हैदराबाद

बहत्तर उपदेश ही क्यों ?

मैं ने अपने इस संयोजन में बहत्तर ७२ ही उपदेशों का संग्रह किया है। क्योंकि यह अंक भगवान के आयुष्य का परिचायक है। भगवान के चारों ही कल्याणक बहत्तर वर्ष में पूरे हो गये। मनुष्य में यदि आत्मबल हो तो वह छोटी सी उमर में भी बहुत कुछ कर लेता है। भगवान ऋषभ को चौरासी लाख पूर्व की आयु में जो कुछ मिला वह महावीर ने केवल बहत्तर वर्षों में ही उपलब्ध कर लिया। केवल जीवन में उत्कट वैराग्य और त्याग की आवश्यकता है। कभी कभी हजारों उपदेश सुनने पर भी मन में वैराग्य नहीं जागता और न ही मन त्याग के लिए तैयार होता है और कभी एक ही उपदेश जीवन में जादू का काम कर जाता है ! जीवन में उपादान उपस्थित हो तो फिर बाहर का निमित्त भी काम कर जाता है। नहीं तो तीर्थंकर की वाणी भी भगवान महावीर की पहली देशना की तरह निष्फल हो जाती है। अन्तरंग कहाँ कितना जाग्रत है। यह व्यवहार ज्ञान से परे है। व्यवहार में तो शिक्षा, प्रेरणा तथा उद्बोधन ही प्रधान है। उस की उपयोगिता इस लोक में सोलह आना सत्य है।

जब एक उपदेश भी काफी होता है तो फिर क्या बहत्तर उपदेश कम हैं ? मुमुक्षु के लिए ये बहुत हैं। एक एक उपदेश

प्रतिवर्ष भी जीवन में उतरता रहे तो इसे जीवन में आनें के लिए वहत्तर वर्ष तो लग ही जायेंगे। उपदेश केवल गिनने और पढ़ने के लिए ही नहीं होते, वे मनन और आचरण करने के लिए भी होते हैं। प्यास वुझाने के लिए सारा सागर ही पीना नहीं होता! पानी के दो घूंट ही काफी हैं इस के लिए, किन्तु पीये तो? न पीने वाले के लिए कुँआ, तालाव, सरिता और सागर सव वेकार हैं। पीने वाले के लिए मीठे पानी की एक गागर वहुत है। क्या गलत है यह?

यह पुस्तुक भी एक 'गागर में सागर' और 'विन्दु में सिन्धु' के समान है। यह परम प्रिय वहत्तर ७२ का अंक भगवान महावीर की मधुर स्मृति को आप के मानस में सदैव जाग्रत रख कर आप को अपने लक्ष्य की प्रेरणा देता रहेगा।

मनोहर मुनि 'कुमुद'

इसके चिन्तन से मानव का
मंगलमय संसार बनेगा।
जीवन की नौका का यह
एक सफल पतवार बनेगा॥

एक एक उपदेश इस का
जीवन कलिमल दूर करेगा।
ज्ञान दर्शन और चरित का
मंगलमय सुवास भरेगा॥

संयोजक तथा पद्यानुवादक
स्व. आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के
सुशिष्य उत्कल केसरी पंडित रत्न प्रवक्ता
श्री मनोहर मुनिजी महाराज 'कुमुद'
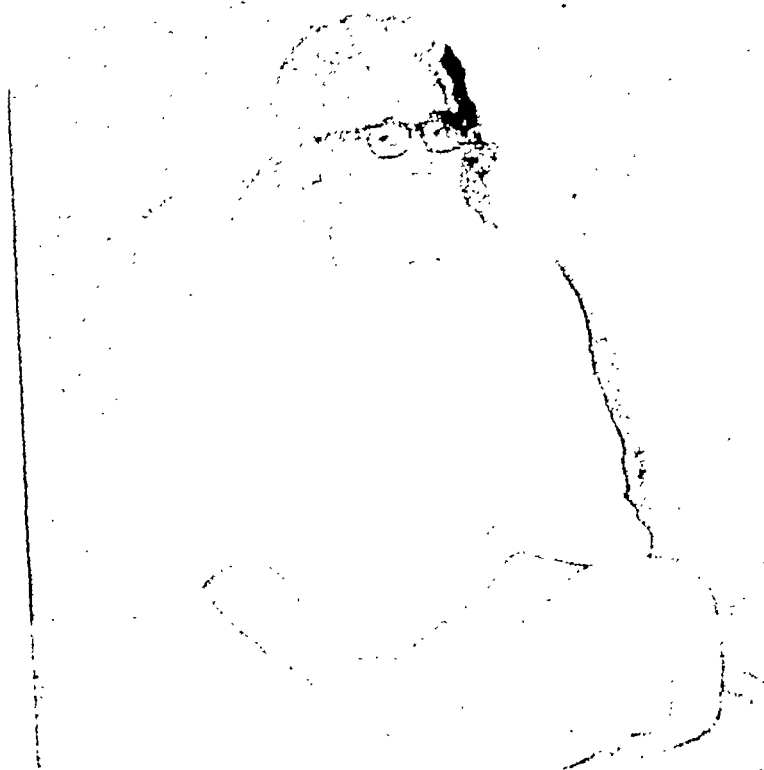
प्रेरक–

उत्कल केसरी श्री मनोहर मुनिजी महाराज के परम सहयोगी, संगीत प्रेमी श्री विजय मुनिजी महाराज

देखिए पढ़िये और सोचिये

जो नम्बर आप की जिज्ञासा व प्रश्न का है उसी नम्बर की गाथा में अपना समाधान पढ़ने का कष्ट करें। भगवान महावीर की इस धर्म वाणी में जीवन के गहन से गहन प्रश्नों का समाधान भी आप को उपलब्ध हो सकेगा इसमें। किन्तु इस के लिए प्रत्येक गाथा पर गहन चिन्तन भी नितान्त अपेक्षित है।

संकेतों को भी समझिये

उत्त०—उत्तराध्ययन सूत्र

दश०—दशवैकालिक सूत्र

प्र०—प्रज्ञापना सूत्र

सू०—सूत्र कृतांग

श्रुत्र—श्रुतस्कन्ध

अ०—अध्याय

गा०—गाथा

उ०—उद्देश

वे जिज्ञासाएँ
जो किसी भी
आस्तिक
विचारक
तथा
धार्मिक
व्यक्ति के हृदय
में
उभर सकती हैं

१. कर्म का वीज क्या है ? कर्म कहाँ से उत्पन्न होता है ? जन्म-मरण का मूल क्या है और वस्तुतः दुख किसे कहा जाता है ?
२. जीव के आवागमन की धुरी क्या है ?
३. मनुष्य जन्म कब और कैसे प्राप्त होता है ?
४. जीवन में शान्ति पाने के लिए किस शास्त्र-ज्ञान की आवश्यकता है ?
५. मानव का सच्चा धर्म क्या है ?
६. अहिंसा का व्यापक रूप क्या है ?
७. संसार में अविश्वास का मूल क्या है ?
८. मनुष्य को कैसी वाणी वोलनी चाहिये ?
९. अस्तेय का विराट् एवं सच्चा स्वरून क्या है ?
१०. ब्रह्मचर्य का साधक कौन हो सकता है ?
११. पाप से उपार्जित धन के क्या दुष्परिणाम होते हैं ?
१२. दुराचारी की दुनिया में क्या दुर्दशा होती है ?
१३–१४. संसार में शुभाशुभ तथा दुख-सुख का जिम्मेवार कोई और है या स्वयं जीव ही ?
१५. युद्ध किस से करना चाहिये ? सच्चा सुख कैसे मिलता है ?
१६. कपाय से क्या क्या हनियाँ होती हैं ?
१७. अज्ञानी क्या क्या कर्म करता है ?
१८. सच्ची विजय क्या है ?
१९. कपाय कैसे दूर हों ?
२०. मान पाप की खान-कैसे ?

५१. मनुष्य को संसार में कैसे रहना चाहिये ?
५२. निर्वाण क्या है ?
५३. चार अमूल्य वातें-कौन सी हैं ?
५४. धर्म कव तक कर लेना चाहिये
५५. दिनरात किस के सफल होते हैं ?
५६. संसार में डूवते प्राणी को सहारा किस का है ?
५७. सुगति किसे मिलती है ?
५८. संगति किस की करे और किस की न करे अकेला भी यदि रहना पड़े तो फिर किस प्रकार रहे ?
५९. सच्चा त्यागी कौन ?
६०. अपनी सव से अधिक हानि कौन करता है ?
६१. ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी होने का सार क्या है ?
६२-६३. जीवन क्षणिक है, नश्वर है। किस की तरह ?
६४. कितने प्रकार की भाषा सत्य हो सकती है ?
६५. असत्य भाषा के प्रकार कितने हैं ?
६६. मनुष्य को प्रतिदिन क्या चिन्तन करना चाहिये ?
६७. क्या इच्छा का अन्त हो सकता है ?
६८. क्या कर्म भोगना ही पड़ता है ?
६९. इस संसार से कौन तर सकता है ?
७०. सच्चा यज्ञ क्या है ?
७१. सच्चा स्नान क्या है।
७२. व्यक्ति दुखों से कव छूटता है ?

कवितानुवाद

अब समाधान

पढ़िये

भगवान महावीर की

अपनी

वाणी में

१. गाथा

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं
कम्मं च मोहप्पभवं वयंति ।
कम्मं च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरणं वयंति ॥

उत्त० अ० ३२ गा० ७

अर्थ

राग और द्वेष–ये दो ही कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है और कर्म ही जन्म मरण का मूल है। वस्तुतः जन्म-मरण को ही दुख कहा जाता है।

१ इक राग है, इक द्वेष है,
कर्म का यह बीज है ।
जीव को जो बान्धती यह,
एक ही बस चीज है ॥

२ आवागमन का मूल जो,
उस कर्म की मोह खान है ।
आत्मा का ज्ञान मोह-वश,
बन रहा अज्ञान है ॥

३. इक जन्म है इक मरण है,
संसार के ये दुःख महा ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

२. गाथा

एगया देवलोएसु
नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं
अहाकम्मेहिं गच्छइ ॥

उत्त० अ० ३ गा० ३

अर्थ

जीव अपने कृत कर्मानुसार कभी देवलोक में, कभी असुर योनि में और कभी नरक में चला जाता है।

१. स्वर्ग के सुख-भोग प्राणी,

कर्म से पाता रहा ।

कर्म के बन्धन से ही,

यह नरक में जाता रहा ॥

२. आसुरी योनि का यह,

मेहमान भी बनता रहा ।

कर्म के उद्भव से यह,

इनसान भी बनता रहा ॥

३. कृत कर्म के अनुसार ही,

यह रूप नाना बदलता ।

★ महावीर ने यह सुवचन,

प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

३. गाथा

कम्माणं तु पहाणाए
आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता
आययंति मणुस्सयं ।।

उत्त० अ० ३ गा० ७

अर्थ

कर्मों के अनुसार एक योनि में से दूसरी योनि में भटकते हुए और अकाम निर्जरा के कारण कर्मों का भार हलका हो जाने से जीव शुद्धि को प्राप्त करते हैं और फिर किसी समय मनुष्य योनि में जन्म धारण कर लेते हैं ।

१. उच्च नीच गतियों में प्राणी,

कर्म शक्ति से जाता है।

अकाम निर्जरा के कारण,

कभी शुद्धि-पथ पर आता है॥

२. पाप कर्म से मुक्त हुआ कुछ,

मानव भव में है आता।

★ महावीर ने यह सुवचन,

प्रिय शिष्य गौतम को कहा॥

४. गाथा

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं
सुई धम्मस्स दुल्लहा।
जं सोच्चा पडिवज्जंति,
तवं खन्तिमहिंसियं ॥

उत्त० अ० ३ गा० ८

अर्थ

यदि किसी तरह मनुष्य जन्म मिल भी जाए तो भी धर्म शास्त्र का श्रवण अति दुर्लभ है। धर्म शास्त्र वस्तुतः वही है, जिसे सुनकर प्राणी तप-क्षमा तथा अहिंसा को ग्रहण करते हैं।

१ क्या हुआ यदि मनुज तन भी,
पा लिया संसार में।
खा रहे नित ठोकरें,
अज्ञान के अन्धकार में॥

२ ज्ञान के अनुराग का मुश्किल,
है मन में जागना,
जिसके विना अति कठिन है,
मिथ्यात्व का मोह त्यागना॥

३. शास्त्र फिर ऐसा सुने,
जो हिंसा से बचा देवे।
क्षमा और तप की जो,
मन में ज्योति जगा देवे॥

४ जीवन के लिए मिथ्या श्रुति,
भव भव में रहती दुखदा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

५. गाथा

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं
अहिंसासंजमो तवो !
देवावि तं नमंसंति
जस्स धम्मे सया मणो ।।

दश० अ० १ गा० १

अर्थ

धर्म एक उत्कृष्ट मंगल है। वह अहिंसा, संयम और तप रूप है। जिस का मन सदा ऐसे धर्म में स्थित रहता है, उस धर्मात्मा पुरुष को देवता भी नमस्कार करते हैं।

१. जगत की मधु शान्ति का,
धर्म ही आधार है ।
त्रिताप की उपशान्ति,
यह धर्म का उपकार है ॥

२. सम्प्रदाय से परे, शुद्ध,
धर्म का स्वरूप है ।
संयम, तपस्या व दया,
यह धर्म का शुद्ध रूप है ॥

३. मन वचन और कर्म से,
यह धर्म जिनके पास है ।
स्वर्ग का भी देवगण,
उनके चरण का दास है ॥

४. संसार में मंगलमय है,
धर्म का ही पथ सदा ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

६. गाथा

जावन्ति लोए पाणा
तसा अदुव थावरा ।
ते जाणमजाणं वा
न हणे नो वि घायए ॥

दश० अ० ६ गा० १०

अर्थ

इस संसार में जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं उन को जाने-अनजाने न स्वयं हिंसा करे और न दूसरे से उन का घात करवाए।

१. उपयोग मय यह जीव है,
और जीवमय संसार है।
इस ओर भी उस ओर भी,
सब जीव का विस्तार है॥

२. छोटे बड़े हर जीव को,
निज आत्मा सम मान लो।
मन वचन और कर्म से,
न तुम किसी का प्राण लो॥

३. भूलकर भी तुम कभी,
हिंसा किसी की मत करो।
न दूसरों को तुम कभी,
इसके लिए प्रेरित करो॥

४ धर्म सूत्रों में सभी से,
यही सूत्र है बड़ा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

७. गाथा

मुसावाओ य लोगम्मि
सव्वसाहूहिं गरिहिओ ।
अविस्सासो य भूयाणं
तम्हा मोसं विवज्जए ॥

दश० अ० ६ गा० १२

अर्थ

संसार में सभी श्रेष्ठ पुरुषों ने झूठ-असत्य वचन की निन्दा की है। क्योंकि झूठ मनुष्यों के हृदय में अविश्वास उत्पन्न करता है। अतः असत्य वचन का परित्याग कर देना चाहिए।

१. वैसे तो मानव-जगत में,
बहुत तरह का पाप है।
पर समझ लो इतना जरा,
कि झूठ सब का बाप है॥

२. झूठ और विश्वास का,
होता कभी भी मेल ना।
साधु जनों ने झूठ की,
भर पेट की है भर्त्सना॥

३. छोड़ दे हे धर्म राही!
झूठ को तू सर्वदा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

८ गाथा

दिट्ठं मियं असंदिद्धं
पडिपुण्णं विअंजियं ।
अयंपिरमणुव्विग्गं
भासं निसिर अत्तवं

दश० अ० ८ गा० ४९

अर्थ

आत्म-ज्ञानी सदा दृष्ट, परिमित, असन्दिग्ध, परिपूर्ण, स्पष्ट, अनुभूत, वाचालता से रहित और किसी प्राणी के लिए उद्विग्नकारक न हो, ऐसी वाणी बोले ।

१. वाणी से ही संसार में,
मनुष्य की पहचान है।
सत्य उस की शान है,
और सत्य उसका प्राण है॥

२. ज्ञानी रहे गम्भीर नित,
वाचालता में न वहे।
सन्देह रहित देखा हुआ,
परिपूर्ण परिमित सत्य कहे॥

३. अनुभूति में उतरा हुआ,
स्पष्ट हितमय प्रिय कहे।
जो भी सुने छोटा-बड़ा,
हृदय कली उसकी खिले॥

४. न कुवचन मुख से कहे,
जो दुःखमय हो विष भरा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

१. गाथा

उड्ढं अहेय तिरियं दिसासु
तसा य जे थावर जे य पाणा।
हत्थेहि पायहि य संजमित्ता,
अदिन्नमन्नसु य नो गहेज्जा ॥

सू० श्रु० १ अ० १० गा० २

अर्थ

ऊर्ध्व और तिर्यग् दिशा में जितने भी त्रस और स्थावर जीव रहते हैं आत्मज्ञानी पुरुष उन्हें हाथ-पैरों तथा अन्य अंगों से किसी भी प्रकार की पीड़ा न पहुंचावे। अपने जीवन को संयम में रखे। बिना दिये दूसरे की चीज कदापि न लेवे।

१ मनुष्य के चारों तरफ,
कितना बड़ा संसार है।
जड़ व चेतन का मिलन ही,
लोक का आकार है॥

२. वे त्रस संज्ञक जीव हैं,
है व्यक्त जिनकी चेतना।
उनका स्थावर नाम है,
अव्यक्त जिनकी वेदना॥

३ है सार संयम का यही,
हिंसा किसी की न करे।
हाथ से और पैर से,
न प्राण प्रिय उनका हरे॥

४. न कुछ भी ले आज्ञा बिना,
है सन्त का व्रत याचना।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

१०. गाथा

सद्दे रूवे य गंधे य,
रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे,
निच्चसो परिवज्जए॥

उत्त० अ० १६ गा० १०

अर्थ

ब्रह्मचर्य के साधक को शब्द रूप, रस गन्ध और स्पर्श आदि पांच काम गुणों को सदा के लिए छोड़ देना चाहिये।

१. जीवन के समस्त व्रतों का,
ब्रह्मचर्य सम्राट् है ।
हर व्रत है छोटी नदी,
ब्रह्म सागर विराट् है ॥

२. साधक की साधना का,
ब्रह्म ही प्राण है ।
आत्मा के साक्षात् का,
ब्रह्म ही सोपान है ॥

३. कहीं शब्द, रूप और गन्ध है,
कहीं स्पर्श-रस के योग हैं ।
नश्वर सुख के बीज ये,
इन्द्रियों के भोग हैं ॥

४. हे ब्रह्म के साधक तुम्हें !
है काम गुण को छोड़ना ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

११. गाथा

जे पाव कम्मेहि धणं मणूसा
समाययन्ती अमइं गहाय ।
पहाय ते पासपयट्टिए नरे
वेराणुबद्धा णरयं उवेन्ति ॥

उत्त० अ० ४ गा० २

अर्थ

धन को अमृत स्वरूप समझ कर मनुष्य अनेक पाप कर्मों के द्वारा धन को प्राप्त करता है और वह कर्मों के दृढ वन्धन में वंध जाता है। अनेक प्राणियों के साथ वैर वान्ध कर अन्त में सव कुछ यहीं छोड़ कर नरक में चला जाता है।

१. जो पाप-पथिक पाप से,
नित धन कमाता है।
अमी रस समझ कर इसको,
वह अपना सब गँवाता है।।

२. किसी से राग करता है,
किसी से द्वेष करता है।
हिंसा-वैर के पापों से,
जीवन घट को भरता है।।

३ बान्ध कर कर्म के बन्धन,
वह खाली हाथ जाता है।
भटकता है चौरासी में,
नरक के दुख उठाता है।।

४. मधु लिपटी-खड्ग सा,
है भोग के सुख का मजा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा।।

१२. गाथा

जह सुणी पूइ कन्नी
निक्कसिज्जई सव्वसो ।
एवं दुस्सील पडिणीए
मुहरी निक्कसिज्जई ॥

उत्त० अ० १ गा० ४

अर्थ

जैसे सडे हुए कानों वाली कुतिया प्रत्येक स्थान से निकाल दी जाती है वैसे ही दुःशील और गुरुजनों का विद्वेषी तथा असम्बद्ध प्रलापी मनुष्य सब स्थानों से निकाल दिया जाता है ।

१ जो बाहर से तो साधक है,
पर दुःशील अभिमानी है।
जो गुरु जनों का निन्दक है,
और विद्वेषी अज्ञानी है॥

२. जिस की आँखों में शर्म नहीं,
जो मुँह आए कह देता है।
जो त्याग मूर्त्ति गुरु जन को भी,
आड़े हाथों लेता है॥

३. सड़े हुए कानों वाली वह,
कुतिया-सा दुख पाता है।
वह धर्म-संघ और धर्म गण से,
बाहर निकाला जाता है॥

४. सन्मान मिल सकता नहीं,
अविनीत को संसार का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

१३. गाथा

अप्पा नई वेयरणी
अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा काम दुहाधेनु
अप्पा मे नन्दणं वणं ॥

उत्त० अ० २० गा० ३६

अर्थ

मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी है, मेरी आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है। मेरी आत्मा ही कामधेनु है और मेरी आत्मा ही नन्दन वन है।

१. वैतरणी नदी-सा दुख मया,

हे स्वयं ही यह आत्मा।

स्वयं ही इस आत्मा को,

शाल्मी तरु सा कहा॥

२. है स्वयं ही आत्मा यह,

काम धेनु सुख - मया।

स्वर्ग का नन्दन समझ लो,

है स्वयं यह आत्मा॥

३. दुख का और सुख का वस,

है जनक यह आत्मा।

★ महावीर ने यह सुवचन,

प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

१४. गाथा

अप्पा कत्ता विकत्ता य
　　　　दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्तं च
　　　　दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥

उत्त० अ० २० गा० ३७

अर्थ

आत्मा स्वयं ही दुख-सुख को उत्पन्न करता है और स्वयं ही नाश करता है। सत्पथ पर चलने वाला आत्मा स्वयं अपना मित्र है और असत् पथ-गामी आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु है।

१. स्वयं ही स्वर्ग का यह,
आत्मा निर्माण करता है।
अपने ही कर्म से यह,
नरक का मेहमान वनता है॥

२. कभी विवेक से यह,
सुख की दुनिया बसाता है।
कभी अज्ञान में आकर,
स्वयं प्रलय मचाता है॥

३. कभी अपने से ही यह,
शत्रु-सा व्यवहार करता है।
कभी सुमित्र बन कर,
स्वयं का उपकार करता है॥

४. सत्य अपना मीत है,
और असत् शत्रु है बड़ा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

१५. गाथा

अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्झेण बज्झओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं,
जइत्ता सुहमेहए ॥

उत्त० अ० ९ गा० ३५

अर्थ

हे पुरुष ! तू अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध कर । बाहर के शत्रुओं से लड़ने से क्या लाभ ? आत्मा के द्वारा ही आत्मा को जीतने से सच्चा सुख मिलता है ।

१. है कहाँ दुश्मन तेरा ?
इतना नहीं तुझ को पता !
अज्ञान में तू बाहर के,
नित शत्रुओं से लड़ रहा,

२. तेरे ही मन का बिम्ब है,
सर्वत्र बाहर पड़ रहा ।
तू स्वयं निज को देखता है,
बाहर में अच्छा बुरा ॥

३. न बाहर के संग्राम में,
तुम नष्ट जीवन को करो ।
अपने ही मन को रोक कर ?
अपने विकारों से लड़ो ॥

४. ज्ञान से मन जीत कर,
तू सुख शाश्वत पायेगा ॥
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

१६. गाथा

कोहो पीइं पणासेइ
माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ
लोहो सव्वविणासणो।।

दश० अ० ८ गा० ३८

अर्थ

क्रोध प्रीति को नष्ट करता है। मान से विनय का नाश होता है। माया मित्रता का हनन करती है और लोभ सब गुणों का नाश कर देता है।

१. कषाय आत्मा के लोक में,
विप्लव मचाता है ।
सद्‌गुणों के शिखर से
नीचे गिराता है ॥

२. क्रोध प्रेम के सूत्र को,
झटपट तोड़ देता है ।
विनय के कनक-घट को भी,
यह अहं फोड़ देता है ॥

३. छल से मैत्री का भाव भी,
निष्प्राण होता है ।
लोभ से सर्व गुण गण का,
हो बस अवसान होता है ॥

४. दमन करना चाहिये,
साधक को इस कषाय का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

१७. गाथा

हिंसे बाले मुसावाई
माइल्ले पिसुणे सढे ।
भुंजमाणे सुरं मंसं
सेयमेयं ति मन्नइ ॥

उत्त० अ० ५ गा० ९

अर्थ

अज्ञानी मनुष्य हिंसा करता है, झूठ बोलता है, छल कपट करता है। निन्दा-चुगली में रत रहता है। शठता का व्यवहार करता है और मांस मदिरा का सेवन करता है। यह सब कुछ करता हुआ भी अज्ञान के कारण इसी में अपना हित समझता है।

१. जानते हो बाल जन को.
क्या भला पहचान है।
बाल वह जो आत्मा के,
ज्ञान से अनजान है ॥

२. जो शरण ले असत् को,
हिंसा सदा करता रहे ।
कपट से व पिशुनता से,
पाप घट भरता रहे ॥

३. जीवन के हर व्यवहार में,
नहीं धूर्त्तता को छोड़ता ।
सुरा में और मांस में,
आसक्त रहता है सदा ॥

४. आश्चर्य है फिर मानता है,
पथ इसे कल्याण का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

१८, गाथा

जो सहस्सं सहस्साणं
संगामे दुज्जए जिणे।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ ।।

उत्त० अ० ९ गा० ३४

अर्थ

दुर्जय संग्राम में दस लाख सुभटों पर विजय प्राप्त करने की अपेक्षा अपने ही दुष्ट मन पर विजय प्राप्त करना सब से श्रेष्ठ विजय है।

१. वीर किसको है कहा ?
उसकी विजय का रूप क्या ?
भोग का यह कीट मानव,
क्या इसे है समझता ?!

२ जो विजय संग्राम में,
दस लाख सुभटों पर करे,
आत्म-विजय को समझ लो,
तुम इस विजय से भी परे ॥

३. आत्म विजेता ही सदा,
मन-इन्द्रियों को जीतता।
लोक में परलोक में,
वह सुख पाता है सदा ॥

४. जग में विजय होती नहीं,
मन-जगत को जीते विना।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

१९. गाथा

उवसमेण हणे कोहं
माणं मद्दवया जिणे।
मायं च अज्जवभावेण
लोभं संतोसओ जिणे।।

दश० अ० ८ गा० ३९

अर्थ

शान्ति से क्रोध को, नम्रता से अहंकार को, सरलता से कपट को तथा सन्तोष से लोभ को जीतना चाहिये।

१. तू शान्ति से क्रोध का,
उपशमन करना सीख ले।
मृदु भाव से अहंकार का,
नियमन करना सीख ले॥

२. ऋजुता से छल के पाप का,
तू दमन करना सीख ले।
सन्तोष से तू लोभ का
हनन करना सीख ले॥

३. इस तरह साधक करे,
निज आत्मा की साधना।
☆ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

२०. गाथा

पूयणट्ठा जसो कामी
माणसम्माण कामए।
बहुं पसवई पावं
मायासल्लं च कुव्वई ॥

दश० अ० ५ उ० २ गा० ३७

अर्थ

जो पूजा, यश तथा मान-सन्मान की कामना करता है, इसकी प्राप्ति के लिए उसे बहुत पाप करना पड़ता है और वह इसके लिए कपट भी करता है।

१. सिर पर पाप की गठरी,
उठा कर कौन ले जाता ।
पाप के विकट सागर में,
गोते कौन है खाता ? ॥

२. साधक मोह का बन्धन,
पलक में तोड़ सकता है ।
माँ और पुत्र के भी,
मोह से मुख मोड़ सकता है ॥

३. मगर मुश्किल है दिल से,
इस यशेच्छा को हटा देना ।
पूजा के मृदुल कुसुमों से,
इस मन को बचा लेना ॥

४. मान-सन्मान के भूखे,
हमेशा पाप करते हैं ।
पूजा की लौ पर वह,
शलभ बन-बन के गिरते हैं ॥

५. यश के वास्ते साधक,
कपट का जाल है बुनता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

२१. गाथा

पडन्ति नरए घोरें
जे नरा पावकारिणो ।
दिव्वं च गइं गच्छंति
चरित्ता धम्ममारियं ॥

उत्त० अ० १८ गा० २५

अर्थ

जो मनुष्य पाप करता है वह घोर नरक में जाता है और जो आर्य धर्म का आचरण करता है वह दिव्य गत्ति को प्राप्त करता है ।

१. पाप कर्म का रसिक प्राणी,
घोर नरक में जाता है।
आर्य धर्म का आराधक,
दिव्य गति नित पाता है॥

२. पाप से बच कर मनुष्य!
धर्म में तू मन लगा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

२२. गाथा

सोच्चा जाणइ कल्लाणं
सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा
जं सेयं तं समायरे ॥

दश० अ० ४ गा० ११

अर्थ

मनुष्य श्रवण करने से ही कल्याण के मार्ग को जानता है और श्रवण के द्वारा ही उसे पाप का ज्ञान होता है। दोनों मार्गों को जान कर, जो आत्मा के लिए शान्तिकर मार्ग हो उसे ग्रहण करना चाहिये।

१. श्रवण से ही धर्म का,
परिज्ञान होता है।
पाप-पथ का श्रवण से ही,
भान होता है॥

२. दोनों का सम्यक ज्ञान नर,
श्रवण से ही पायेगा।
उसको मिलेगी शान्ति,
जो धर्म-पथ अपनाएगा॥

३. श्रुतज्ञान के नित श्रवण को,
प्रियवर कभी न भूलना।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

२३. गाथा

चत्तारि परमंगाणि
दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सूइ सद्धा
संजमम्मि य वीरियं ।।

उत्त० अ० ३ गा० १

अर्थ

इस संसार में जीव को मनुष्यत्व, धर्म श्रवण श्रद्धा और संयम-धर्म के इन चार दुर्लभ अंगों की प्राप्ति दुर्लभ होती है ।

१. सब कुछ मिलता है दुनिया में,
पर सार नहीं मिल पाता है।
सार यदि मिल जाए तो,
फिर निकट सभी कुछ आता है।।

२. धर्म के चार ही हैं अंग,
जो दुर्लभ कहे जाते।
बड़े ही पुण्य से प्राणी,
उन्हें जीवन में हैं पाते।।

३. मनुष्य में भी मनुष्यता,
मुश्किल से मिलती है।
हृदय में श्रुत की कलिका,
कहीं मुश्किल से खिलती है।।

४. श्रद्धा का जागना मन में,
बड़ा दुर्लभ कहा जाता।
बड़ी कठिनाई से प्राणी,
है संयम-पथ पर आता।।

५. इन चार अंगों का मिलन,
जीवन में दुर्लभ है महा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा।।

२४. गाथा

सोही उज्जुयभूयस्स
धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई ।
निव्वाणं परमं जाइ
घयसित्तिव्व पावए ॥

उत्त० अ० ३ गा० १२

अर्थ

सरल आत्मा की शुद्धि होती है और शुद्ध आत्मा में ही धर्म टिकता है। घी से सिंचित अग्नि के समान वह देदीप्यमान होकर परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

१. सरलता का जो धनी,
नित शुद्धता का दास है।
शुद्ध मन में ही सदा,
मंगल धर्म का वास है॥

२ घृत-सिञ्चन आग की ज्यों,
द्युति का वर्धन करे।
आत्म-धर्म का साधक भी,
निर्वाण का अर्जन करे॥

३. साधना का बीज साधक!
समझ लो है सरलता।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

२५. गाथा

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स
खंधाउपच्छा समुवेन्ति साहा।
साहप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता
तओ सि पुप्फं च फलं रसो अ॥

दश० अ० ९ उ० २ गा० १

अर्थ

वृक्ष के मूल से तना उत्पन्न होता है। फिर विभिन्न शाखाएं फूटती हैं। शाखाओं से प्रशाखाएं निकलती हैं। प्रशाखाओं पर पत्ते उगते हैं। फिर फूल खिलते हैं। फिर फल लगते हैं और पश्चात् फलों में रस उत्पन्न होता है।

१. मूल से उभरे सदा ही,
तरु का मोटा तना ।
शाखा प्रशाखा के विभव की,
देख फिर मनहर छटा ।।

२. डालियों की एक शोभा,
है मृदुल पत्ते घने ।
पत्तियों को फूल-फल,
और फल फिर रसमय बने ।।

३ मूल से ले रस तलक,
क्रम है यही तुम जानना ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ।।

२६. गाथा

एवं धम्मस्स विणओ
मूलं परमो से मोक्खो ।
जेण कित्तिं सुयं सिग्घं
निस्सेसं चाभिगच्छइ ॥

दश० अ० ९ उ० २ गा० २

अर्थ

इसी प्रकार धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है और उसका अन्तिम परिणाम मोक्ष है। विनय से मनुष्य कीर्ति, श्रुतज्ञान और प्रशंसा पूर्णरूपेण प्राप्त करता है।

१. सब ने विनय को ही,
धर्म का मूल माना है।
मोक्ष उसका रस परम,
सुख का खजाना है ॥

२. विनय से हो कीर्ति,
श्रुत ज्ञान मिलता है।
सम्मान व निर्माण,
फिर निर्वाण मिलता है ॥

३. विनय को साधक! समझ,
जीवन की सच्ची सम्पदा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

२७. गाथा

अभिक्खणं कोही भवइ
पबन्धं च पकुव्वई ।
मेत्तिज्जमाणो वमइ
सुयं लद्धूण मज्जई ॥

उत्त० अ० ११ गा० ७

अर्थ

अविनीत व्यक्ति के चौदह लक्षण होते हैं। जैसे कि (१) जो वार वार क्रोध करता हो। (२) जिस का क्रोध शीघ्र शान्त न होता हो। (३) जो मित्रता को न निभाता हो। (४) जो विद्या प्राप्तकर गर्व करता हो।

१. क्रोध करे जो बार बार
निज मन में गांठ बना रखे ।
जो पल में मित्र को छोड़े,
और विद्या का भी गर्व करे ॥

(अगली गाथा से सम्बन्धित)

२८. गाथा

अवि पाव परिक्खेवी
अवि मित्तेसु कुप्पई ।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स
रहे भासइ पावयं ॥

उत्त० अ० ११ गा० ८

अर्थ

(५) जो गुरु जनों का तिरस्कार करने वाला हो। (६) जो घनिष्ट मित्रों पर भी क्रोध करता हो। (७) जो हितैषी मित्र की भी पीठ पीछे बुराई करता हो।

१. गुरु चरणों का अपमान करे,
जो प्रिय मीत पर क्रोध करे।
उपकारी की निन्दा से भी,
नहीं कभी जो बाज रहे॥

(अगली गाथा से सम्बन्धित)

२९. गाथा

पइण्णवाई दुहिले
थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
असंविभागी अवियत्ते
अविणीए त्ति वुच्चइ ।।

उत्त० अ० ११ गा० ९

अर्थ

(८) जो असम्बद्ध प्रलापी हो। (९) द्रोही हो। (१०) जो अभिमानी हो। (११) जो रसों में आसक्त हो। (१२) जो इन्द्रियों के वश में हो। जो असंविभागी हो। जो सब को अप्रीतिकर हो। उसे अविनीत कहते हैं।

१. जो मुंह आया बक देता है,
जो हर हृदय से द्रोह करे।
जो अभिमान रसास्वित,
न असंयम से रहे परे॥

२. जो कांटे सा सबको खटके,
जो दे न प्यार के बटवारा।
ऐसा साधक अविनीत कहा,
न लगे किसी को भी प्यारा॥

३. अविनीत की साधक! समझ,
निष्फल है सारी साधना।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

३०. गाथा

विवत्ती अविणीअस्स
संपत्ती विणिअस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं
सिक्खं से अभिगच्छइ॥

दश० अ० ९ उ० २ गा० २२

अर्थ

अविनीत को विपत्ति और विनीत को सम्पत्ति मिलती है। इन दो बातों को जिसने जान लिया है वही सच्ची शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

१ संसार का हर एक दुख,
अविनीत को है घेरता ।
सुविनीत को मिल जाती है,
सारे जगत की सम्पदा ॥

२. बल अपरिमित विनय का,
है जगत में माना गया ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

३१. गाथा

अह पंचहिं ठाणेहिं
जेहिं सिक्खा न लब्भई ।
थम्भा कोहा पमाएणं
रोगेणालस्सएण य ॥

उत्त० अ० ११ गा० ३

अर्थ

अभिमान, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य इन पांच कारणों से शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकती ।

१. है पञ्चदोष का वास जहाँ,
न वहाँ कभी शिक्षा जाती।
न वह देखे ऊँचे कुल को,
न वह देखे ऊँची जाति॥

२ जो अहंकार में चूर रहे,
न विजय क्रोध पर पाता है।
प्रमाद, रोग व आलस को,
न मन से दूर हटाता है॥

३ उस साधक को शिक्षा दासी,
जो पञ्चदोष से दूर रहा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

३२. गाथा

जावन्तऽविज्जा पुरिसा
सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पन्ति बहुसो मूढा
संसारम्मि अणन्तए ।।

उत्त० अ० ६ गा० १

अर्थ

संसार में जितने भी अज्ञानी मनुष्य हैं सब दुख उन्हें ही होते हैं । अज्ञानी इस अनन्त संसार में बहुत प्रकार से कष्ट उठाते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं ।

१. अज्ञान के अन्धकार में,
जो ठोकरें हैं खा रहे ।
सौ बात की है बात यह,
वे दुख सारे पा रहे ॥

२ अनन्त इस संसार में,
नर मूढ दुख पाता रहे ।
इस दुखमय संसार में,
आता रहे, जाता रहे ॥

३. नित आश्रय लेते रहो,
तुम ज्ञान के प्रकाश का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

३३. गाथा

जहा सूई ससुत्ता
पडियावि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते
संसारे न विणस्सइ ॥

उत्त० अ० २९ गा० ५९

अर्थ

जैसे धागा-पिरोई हुई सूई के गिर जाने पर भी सरलता से मिल जाती है। ठीक इसी तरह सूत्र-ज्ञान से युक्त आत्मा संसार में पथ भ्रष्ट नहीं होता। यदि पूर्व कर्मानुसार कहीं मार्ग से गिर भी जाये तो शीघ्र ही सम्भल जाता है।

१. धागे वाली सूचिका ज्यों ?
गुम न होने पाती है ।
गिर जाने पर भी वह शीघ्र,
आंखों में आ जाती है ।।

२. ऐसे ही ज्ञानी पथ से,
न विचलित होने पाता है ।
कर्म दोष से डिगा हुआ भी,
सत्वर · पथ पर आता है ।।

३ लोक में परलोक में,
लो आश्रय नित ज्ञान का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ।।

३४. गाथा

अह अट्ठहिं ठाणेहिं
सिक्खा सीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दन्ते
न य मम्ममुदाहरे ॥

उत्त० अ० ११ गा० ४

अर्थ

आठ गुणों से व्यक्ति शिक्षाशील कहलाता है। जो अकारण ही नहीं हंसता रहता हो अर्थात् जो गम्भीर रहता हो। जो इन्द्रियों का विजेता हो। जो दूसरे का मर्म नहीं कहता हो।

१ आठ गुणों के आभूषण,
जिस साधक के पास रहें।
कान खोल कर सुनो जरा,
हम उस को शिक्षावान कहें॥

२. जो विन कारण न हँसे कभी,
प्रतिपल गम्भीर बना रहता।
जो बने इन्द्रियों का स्वामी,
जो पर का मर्म नहीं कहता॥

(अगली गाथा से सम्बन्धित)

३५. गाथा

नासीले न विसीले वि
न सिया अइलोलुए ।
अकोहणे सच्चरए
सिक्खा सीले त्ति वुच्चई ॥

उत्त० अ० ११ गा० ५

अर्थ

जो शील सम्पन्न हो । जो पुनः पुनः दोष न करता हो । जो अलोलुपी हो । जो शान्त रहता हो और सत्य परायण हो उसे ही शिक्षाशील कहते हैं ।

१. जो शील धर्म का अनुरागी,
न बार - बार व्रत को तोड़े।
जो रस के मोह से दूर रहे,
निज मन को शान्ति में जोड़े॥

२. बस, शिक्षित का है निकष यही,
वह रसिक रहे नित सत्य का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

३६. गाथा

न वि मुण्डिएण समणो
न ओंकारेण बम्भणो ।
न मुणी रण्णवासेणं
कुसचीरेण न तावसो ॥

उत्त० अ० २५ गा० ३१

अर्थ

केवल सिर मुंडवाने से कोई श्रमण (साधु) नहीं होता। ओंकार बोलने से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता। निरे अरण्य में रहने से कोई मुनि नहीं होता और न ही वल्कल धारण करने से कोई तापस कहा जाता है।

१. सिर मुंडवाने से कोई,
श्रमण बन सकता नहीं ।
क्या ओम् पद के रटन से,
ब्राह्मण कहा जाता कहीं ? ॥

२. वन-वास करने से कभी भी,
मुनि पद मिलता नहीं ।
क्या कुशा चीवर धार कर,
तापस बना जाता कहीं ? ॥

३ महत्व तो कुछ भी नहीं,
आत्म धर्म में वेष का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

२७. गाथा

समयाए समणो होइ
बंभचेरेण बंभणो ।
नाणेण य मुणी होइ
तवेण होइ तावसो ।।

उत्त० अ० २५ गा० ३२

अर्थ

समता से ही व्यक्ति श्रमण होता है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही व्यक्ति ब्राह्मण होता है। ज्ञान से ही साधक मुनि बनता है और इच्छा का निरोध करने से अर्थात् तप से ही व्यक्ति तापस होता है।

१ समता से साधक श्रमण बने,

और ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण है।

सुज्ञान रहे तो मुनि बने,

तप से बने तपोधन है ॥

२. बाहरी साधन का मूल्य नहीं,

मूल्य है दुनिया में गुण का।

★ महावीर ने यह सुवचन,

प्रिय शिष्य गौतम ने कहा।

३८. गाथा

चीराजिणं नगिणिणं
जडी संघाडिमुंडिणं ।
एयाणि वि न तायन्ति
दुस्सीलं परियागयं ॥

उत्त० अ० ५ गा० २१

अर्थ

चीवर, मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, संघाटिका और सिर का मुण्डन आदि बाह्य साधन किसी भी दुश्शील को दुर्गति से नहीं बचा सकते ।

१. चीवर के धारण करने से,
साधक को ज्ञान नहीं होता।
मृगचर्म धरे चाहे नग्न रहे,
उस का कल्याण नहीं होता॥

२. चाहे जटाजूट रखे सिर पर,
चाहे गुदड़ी में काटे जीवन।
चाहे लोच करे निज हाथों से,
चाहे करे सिर का मुण्डन॥

३. ये बाहर के साधन सभी,
ऊँचा उठा सकते नहीं।
चरित हीन को दुर्गति से,
ये बचा सकते नहीं॥

४. निर्माण की चाबी है,
साधक के चरित की शुद्धता॥
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

३९. गाथा

उवलेवो होइ भोगेसु
अभोगी नोवलिप्पई।
भोगी भमइ संसारे
अभोगी विप्पमुच्चई ॥

उत्त० अ० २५ गा० ४१

अर्थ

भोग में फंसा हुआ मनुष्य कर्म से लिप्त होता है। अभोगी कर्म से लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है और अभोगी-त्यागी संसार से मुक्त हो जाता है। अर्थात् वह दुख-सुख से ऊपर उठ कर आनन्द को प्राप्त करता है।

१. भोग में आसक्त जो,
वह कर्म का बन्धन करे।
भोग से जो दूर है,
न कर्म-चक्कर में पड़े॥

२. आवागमन भोगी करे,
अभोगी मुक्त हो जाता।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

४०. गाथा

जहा पोम्मं जले जायं
नोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तं कामेहिं
तं वयं बूम माहणं॥

उत्त० अ० २५ गा० २७

अर्थ

जैसे कमल पानी में उत्पन्न होने पर भी कीचड़ से लिप्त नहीं होता। वैसे ही जो संसार में रहते हुए भी काम वासना में लिप्त नहीं होता वस्तुतः वही ब्राह्मण कहलाने के योग्य है।

१ कीच में पंकज उगे,
पर कीच से ऊपर रहे।
संसार में रह कर भी,
जो संसार में फिर न फँसे॥

२. ऐसे ही साधक पुरुष को,
अरिहन्त ने ब्राह्मण कहा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

४१. गाथा

कम्मुणा बम्भणो होइ
कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वईसो कम्मुणा होइ
सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥

उत्त० अ० २५ गा० ३३

अर्थ

मनुष्य ब्राह्मण के योग्य कर्म करने से ही ब्राह्मण होता है। क्षत्रिय के कर्म से क्षत्रिय कहलाता है। वैश्य के कर्म द्वारा ही वैश्य होता है। शूद्र भी कर्म से ही होता है।

१. द्विज की व क्षत्रिय की,
इक कर्म ही पहचान है।
वैश्य का व शूद्र का नित,
कर्म से ही ज्ञान है॥

२. संसार में तुम देख लो,
है कर्म की प्रधानता।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

४२. गाथा

जयं चरे जयं चिट्ठे
जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजन्तो भासन्तो
पावकम्मं न बन्धइ ।।

दश० अ० ४ गा० ८

अर्थ

जीव ध्यान पूर्व चलने, रहने, बैठने, सोने खाने और बोलने से पाप कर्म का बन्ध नहीं करता ।

१. ध्यान व उपयोग से,
हर काम करना चाहिये ।
देख कर के ही धरा पर,
कदम धरना चाहिये ॥

२. उपयोग से शयन करे,
व ध्यान से बैठे - उठे ।
विवेक से भोजन करे नित,
सोच कर वाणी कहे ।

३. साधक कर्म जो भी करे,
नित ध्यान - यतना से करे ।
वह रहेगा कर्मयोगी,
कर्म - बन्धन से परे,

४. यतना धर्म का प्राण है,
यतना धर्म की दिव्यता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

४३. गाथा

सव्वभूयप्पभूयस्स
सम्मं भूयाइ पासओ ।
पिहियासवस्स दन्तस्स
पावकम्मं न बन्धइ ।।

दश० अ० ४ गा० ९

अर्थ

जो प्राणिमात्र को अपने समान समझता है। उन पर समभाव रखता है। जो पाप कर्मों से दूर रहता है तथा जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है। ऐसे संयमी पुरुष को पापकर्म का बन्ध नहीं होता।

१. जो विश्व के हर जीव को,
है समझता अपने समान ।
राग का और द्वेष का,
जिसके नहीं मन में निशान ॥

२. पाप से जो दूर रह,
मन - इन्द्रियों को वश करे ।
है संयमी ऐसा सदा ही,
कर्म - बन्धन से परे ॥

३. मिलन हो सकता नहीं,
समभाव का व पाप का ॥
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

४४. गाथा

निम्ममो निरहंकारो
निस्संगो चत्तगारवो।
समो अ सव्वभूएसु
तसेसु थावरेसु अ ॥

उत्त० अ० १९ गा० ९०

अर्थ

महापुरुष ममत्व से रहित, अहंकार से शून्य, अनासक्त, गर्व का त्यागी और त्रस तथा स्थावर सभी प्राणियों पर समभाव रखने वाला होता है।

१ ममत्व से मन दूर जिसका,
मान की न आग है।
आसक्ति से जो मुक्त है,
न गर्व का अनुराग है ॥

२. छोटे - बड़े हर जीव को,
समता की आंखों से लखे।
महापुरुष वह संसार का,
सामान्य जीवन से परे ॥

३. हर नयन इन नर जगत का,
उसको नहीं पहचानता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

४५. गाथा

लाभालाभे सुहे दुक्खे
जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दापसंसासु
तहा माणावमाणओ

उत्त० अ० १९ गा० ९१

अर्थ

महापुरुष लाभ-हानि, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा, प्रशंसा और मानापमान आदि प्रत्येक स्थिति में समभाव रखता है ।

१. लाभ - हानि में कभी,
समभाव जो खोता नहीं ।
सुख में कभी हँसे नहीं,
दुख में कभी रोता नहीं ॥

२. क्षणिक जीवन का कभी भी,
मोह जो करता नहीं,
मृत्यु हो सन्मुख खड़ी पर,
मन में जो डरता नहीं ॥

३ दुष्ट की निन्दा जिसे,
आकुल बना सकती नहीं ।
सुजन की श्रद्धाञ्जलि,
जिस को लुभा सकती नहीं ।

४. मान पा कर भी कभी,
जो मान में आता नहीं ।
सन्मान मिल जाने पे जो,
अभिमान में आता नहीं ॥

५. महापुरुष वह समभाव का,
मन्त्र कभी नहीं भूलता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ।

४६. गाथा

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि
इमं च मे किच्चं इमं अकिच्चं।
तं एवमेवं लालप्पमाणं
हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ॥

उत्त० अ० १४ गा० १५

अर्थ

'यह मेरा है' और 'यह मेरा नहीं है।' 'यह मैं ने कर लिया है 'और' यह अभी नहीं किया' इस प्रकार संकल्प-विकल्प करने वाले मनुष्य के आयुष्य को काल रूपी चोर हरण करते रहते हैं। अरे जीव ! फिर तू क्यों प्रमाद में पड़ा है ?

१. 'यह है मेरा' 'वह मेरा' नहीं,
मूर्ख नर यह कहता है।
'यह हो चुका है' यह है करना,
संकल्प नदी में वहता है।

२. ऐसे नर के जीवन धन को,
काल-चोर हर ले जाता।
रे अज्ञानी! सुन जिन वाणी,
क्यों प्रमाद नहीं तजता॥

३. काल के आगे यह जीवन,
है सदा ही हारता।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

४७. गाथा

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमम्मि लोए अदुवा परत्था ।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥

उत्त० अ० ४ गा० ५

अर्थ

पापी पुरुष इस लोक में तथा परलोक में कहीं भी धन के बल पर अपने कर्मों के फल से नहीं बच सकता। अनन्त मोह के कारण प्राणी का ज्ञान-दीप बुझ जाता है। वह न्याय मार्ग को देखता हुआ भी न देखते हुए की तरह काम करता है।

१- धन से कभी भी पाप-फल से,
त्राण हो सकता नहीं ।
इस लोक में परलोक में,
कल्याण हो सकता नहीं ॥

२. ज्ञान का दीपक बुझे नित,
मोह के झंझावात में ।
न्याय - पथ कैसे दिखे,
फिर मोह की काली रात में ॥

३. धन का भरोसा न करो,
झूठी है जग की सम्पदा ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

४८. गाथा

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ
न मित्तवग्गा न सुया न बन्धवा ।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ॥

उत्त० अ० १३ गा० २३

अर्थ

जीव के दुख में उसके सम्बन्धी हिस्सा नहीं बटाते । मित्र वर्ग, पुत्र तथा अन्य भाई बान्धव कुछ भी सहायता नहीं कर सकते । यह जीव अकेला ही अपने कर्मों का भोग करता है क्यों कि नियम है कि कर्त्ता के पीछे ही कर्म जाता है ।

१. पूर्व कर्म के दोष से,
जब जीव को दुख घेरता है ।
अपना कोई बनता नहीं,
हर मित्र आंखें फेरता है ॥

२. अपना सगा परिवार,
निज को छोड़ देता है ।
नेह के सूत्र पलक में,
तोड़ देता है ॥

३. स्वय ही यह आत्मा,
है दुख सारा भोगता ।
संग जाता है कर्म,
वह जीव को नहीं छोड़ता ॥

४. निठुर है जग में कर्म,
दह न करे बिल्कुल दया ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

४९. गाथा

असंखयं जीविय मा पमायए
जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं।
एवं विजाणाहि जणे पमत्ते
किण्णु विहिंसा अजया गहिन्ति ॥

उत्त० अ० ४ गा० १

अर्थ

जीवन का सूत्र एक बार टूट जाने पर फिर जुड़ता नहीं। बुढ़ापा आने पर कोई रक्षक नहीं होगा। जो पापी हैं, हिंसा में रत हैं और संयम से हीन हैं, वे अन्त में किस की शरण लेंगे ?

१. जब आयु की शाखा से,

यह जीवन पुष्प झरता है।

न कोई विश्व का विज्ञान,

उसे फिर जोड़ सकता है।

२. तेरे उन्मत्त यौवन को,

बुढ़ापा जब दबायेगा।

तुझे इस कर्म फल से,

कौन फिर आकर बचायेगा॥

३ हे प्रमाद के राही ! तू,

जीवन - ज्ञान कैसे पायेगा ?।

हिंसा, असंयम, पाप से,

तू त्राण कैसे पायेगा ?॥

४. धर्म का मार्ग पकड़,

और छोड़ मार्ग पाप का।

★ महावीर ने यह सुवचन,

प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

५०. गाथा

तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा
विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।
सज्झायएगंत निसेवणा य
सुत्तत्थ संचिंतणया धिई य ।।

उत्त० अ० ३२ गा० ३

अर्थ

गुरु और वृद्ध जनों की सेवा, अज्ञानी लोगों की संगति का परित्याग, धर्म शास्त्रों का स्वाध्याय, एकान्त-स्थान में वास, सूत्र तथा उसका अर्थ चिन्तन-अर्थात् आत्म-चिन्तन और धैर्य-यानी प्रतिकूल स्थिति में समभाव रखना, यही वस्तुतः मोक्ष-अर्थात् शान्ति का मार्ग है ।

१. गुरु जन की, वृद्ध की,
सेवा बजाना चाहिये।
साधक पुरुष को बाल-
जन से दूर जाना चाहिये।

२ स्वाध्याय के करने में,
अपना मन लगाना चाहिये।
एकान्त में रह कर,
दुख से त्राण पाना चाहिये॥

३ सूत्र को और अर्थ को,
दिल में बिठाना चाहिये।
प्रतिकूलता यदि हो तो फिर,
धीरज दिखाना चाहिये॥

४. ध्यान में रखना सदा,
मार्ग यही है मोक्ष का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

५१. गाथा

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी
न वीससे पंडिए आसुपन्ने ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं
भारंडपक्खीव चरेऽप्पमत्ते ॥

उत्त० अ० ४ गा० ६

अर्थ

मोह निद्रा में सोये हुए लोगों के बीच बुद्धिमान-पंडित पुरुष नश्वर जगत का कभी भी विश्वास न करे। काल बड़ा भयंकर है। शरीर निर्बल है। अर्थात् काल का मुकाबला वह नहीं कर सकता। ऐसा समझ कर ज्ञानी पुरुष भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त-अर्थात् दुनिया में सदैव जाग्रत हो कर रहे—कभी भी अपने आतमा और उसके विशुद्ध सत् धर्म को भूले नहीं।

१. हैं जगत के प्राणी सभी,
मोह नींद में सोये हुए।
हैं भोग के नश्वर सुखों में,
भान निज खोये हुए॥

२. जगत के झूठ विभव की,
आश न पंडित करे।
य रहेंगे संग यह,
विश्वास न पंडित करे॥

३. काल का प्रहार निर्बल,
तन कभी न सह सकेगा।
काल की आन्धी में,
जीवन-दीप न यह रह सकेगा॥

४ प्रमत्त हो कर न कभी,
संसार में ज्ञानी रहे।
भारंड पक्षी की तरह,
नित सावधानी से रहे॥

५. जीव का शत्रु नहीं,
संसार में प्रमाद सा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

५२. गाथा

उड्ढं अहे य तिरियं
जे केइ तसथावरा ।
सव्वत्थ विरइं विज्जा
संति निव्वाणमाहियं ॥

सू० श्रु० १ अ० ११ गा० ११

अर्थ

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और तिर्यग् लोक इन तीन लोकों में जितने भी त्रस और स्थावर जीव हैं। उन के अतिपात से निवृत्त हो जाना चाहिये। वैर की उपशान्ति को ही निर्वाण कहा गया है।

१. ऊर्ध्व, अधः और मर्त्य लोक,
    यह लोकत्रय है पुरुषाकार।
अनन्त, अनादि और शाश्वत,
    चौदह राजू का विस्तार ॥

२. जितने भी हैं जीव कर्म संग,
    इसी लोक में रहते हैं।
कभी न हिंसा करे किसी की,
    धर्म सूत्र सब कहते हैं ॥

३. वैर से निवृत्त होना,
    दुख का अवसान है।
इस लोक में परलोक मे,
    इक शान्ति ही निर्वाण है ॥

४. न करे अपहरण जग में,
    जीव के प्रिय प्राण का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
    प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

५३. गाथा

अपुच्छिओ न भासेज्जा
भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा
मायामोसं विवज्जए ॥

दश० अ० ८ गा० ४७

अर्थ

साधक बिना पूछे नहीं बोले । बातें करते हुए लोगों के बीच जा कर नहीं बोले । पीठ पीछे किसी की निन्दा न करे । कपट-युक्त वाणी न बोले ।

१. पूछे बिना अपनी सम्मति,
न किसी को बोलिये ।
दो जनों के बीच जाकर,
व्यर्थ न मुंह खोलिये ।।

२. दूर जा कर भी किसी की,
न कभी निन्दा करे ।
सरल हृदय से रहे,
न छल-कपट मन में धरे ।।

३. इन चार बातों में छिपी,
जीवन की सच्ची सफलता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ।।

५४. गाथा

जरा जाव न पीडेइ
वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति
ताव धम्मं समायरे ॥

दश० अ० ८ गा० ३६

अर्थ

जब तक बुढ़ापा नहीं आता। रोग जब तक बढ़ कर जीवन को घेर नहीं लेते और इन्द्रियों की शक्ति जब तक क्षीण नहीं हो जाती, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए—अर्थात् मरणासन्न होने पर कुछ भी सुकृत नहीं होगा।

१. इस तन के यौवन-रूप पर,
जब तक बुढ़ापा न चढ़े ।
इस स्वस्थ-सुन्दर देह में,
जब तक व्याधि न बढ़े ॥

२. इन्द्रियों की शक्ति भी,
यह हीन न जब तक बने ।
तब तलक चाहिये पुरुष को,
धर्म का साधन करे ॥

३. यह जीवन एक घट है,
जल चाहिए मोक्ष का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

५५. गाथा

जा जा वच्चइ रयणी
न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स
सफला जन्ति राइओ ॥

उत्त० अ० १४ गा० २५

अर्थ

जो जो रात्रियाँ बीत जाती हैं, वे फिर लौट कर वापिस नहीं आतीं। धर्म करने वाले व्यक्ति की रात्रियाँ सदा सफल होती हैं।

१. आकर रात जीवन में,
जो आगे है निकल जाती।
समझ लो, सोच लो दिल में,
नहीं वह लौट कर आती॥

२. जीवन की मौन रातों में,
जो प्राणी धर्म कर लेगा।
सफलता के मृदु अमी से,
वह जीवन-कलश भर लेगा॥

३. इस दुर्लभ मानव जन्म में,
तू जो बने जल्दी बना।
महावीर ने यह सुवचन,
हित शिष्य गौतम से कहा॥

५६. गाथा

जरामरण वेगेणं
वुज्झमाणाण पाणिणं।
धम्मो दीवो पइट्ठा य
गई सरणमुत्तमं ॥

उत्त० अ० २३ गा० ६८

अर्थ

संसार रूपी समुद्र के जरा और मरण रूपी प्रवाह में वहते हुए प्राणी के लिये धर्म ही एक मात्र द्वीप है। आधार और उत्तम शरण है।

१. संसार सागर में जरा—
और मरण का प्रवाह चले।
कर्म के परवश हुए,
हैं जीव इस में बह रहे॥

२ संसार की हर चीज,
साधक के लिए निस्सार है।
इक धर्म ही है द्वीप,
उत्तम शरण व आधार है॥

३. डूबते प्राणी को जल में,
है सहारा धर्म का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
निज शिष्य गौतम से कहा॥

५७. गाथा

तवोगुणपहाणस्स
उज्जुमइ खंति संजमरयस्स ।
परीसहे जिणन्तस्स
सुलहा सुगई तारिसगस्स ॥

दश० अ० ४ गा० २७

अर्थ

जो साधक तपगुण में प्रधान है–अर्थात् घोर तपस्या करता है । जिसका हृदय सरल है, जो क्षमा और इन्द्रिय-संयम में सदा लीन रहता है । जो जीवन में आए हुए प्रत्येक कष्ट को समभाव पूर्वक सहन करता है । ऐसे साधक के लिए सुगति-अर्थात् मोक्ष अति सुलभ है ।

१. जो साधक अपने जीवन में,
नित घोर तपस्या करता है।
जो क्षमा, सरलता संयम के,
उत्तम-पथ पर पग धरता है ॥

२ जो जीवन में धैर्य - बल से
हर एक परिसह सहता है।
नित समता रस में लीन रहे,
न उफ तक मुंह से कहता है।

३. वह न भटके भव-सागर में,
है शुभ गति उसको सुलभा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

५८. गाथा

न वा लभेज्जा निउणं सहायं
गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
एगो वि पावाइं विवज्जयंतो
विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ।।

उत्त० अ० ३२ गा० ५

अर्थ

यदि किसी को अपने से अधिक या समान गुण वाला योग्य सहयोगी न मिले तो वह अपने आप को पापों से दूर रखता हुआ और भोगों के प्रति अनासक्त रहता हुआ एकाकी ही विचरण करे किन्तु अपने से हीन गुण वाले की संगति कदापि न करे।

१. यदि न मिले जो गुण में हो,
ऊँचा चढ़ा हुआ ।
ज्ञान में और चरित में,
आगे बढ़ा हुआ ।

२. अपने समान गुण का भी,
साथी जो न मिले ।
संयम-सुपथ का वह पथिक,
इकला ही फिर चले ॥

३. दूर रह कर पाप से,
समभाव से विचरे ।
पर भूल कर भी नीच की,
संगति वह न करे ॥

४ असंयमी के संग से,
तुम दूर ही रहना सदा ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

५९. गाथा

जे य कन्ते पिए भोए
लद्धे वि पिट्ठीकुव्वइ ।
साहीणे चयइ भोए
से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥

दश० अ० २ गा० ३

अर्थ

जो प्रिय और कमनीय भोगों के उपलब्ध होने पर भी उन से मुंह मोड़ लेता है और जो हस्तगत विषयों को भी नहीं भोगता। वस्तुतः वही सच्चा त्यागी कहा जाता है।

१ जो प्रिय भोगों से सदा ही,
पीठ मोड़ कर रहे ।
प्राप्त भोगों पर कभी जो,
आंख तक भी न धरे ॥

२ संसार में वह पुरुष ही,
त्यागी कहा जाता ॥
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

६०. गाथा

न तं अरी कंठछित्ता करेइ
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥

उत्त० अ० २० गा० ४८

अर्थ

दुराचार में अनुरक्त प्राणी जितना अनिष्ट करता है उतना अहित तो गला काटने वाला शत्रु भी नहीं करता। ऐसा निर्दयी मनुष्य मृत्यु के आने पर अवश्य अपने दुष्कृत को समझ कर पश्चाताप करेगा।

१२१

१. इस जीवन का घातक शत्रु,
कष्ट नहीं इतना देता ।
दुराचार से अनुरक्त नर,
है जितना दुख बढ़ा लेता ॥

२. इस जीवन का अन्त समझ लो,
एक जन्म की हानि है ।
पर दुष्टात्मा का जीवन तो,
जन्म-मरण की खानि है ॥

३. दयाहीन नर पाप कर्म से,
यदि बाज न आएगा ।
मृत्यु-मुख में पड़ा हुआ यह,
फिर पुन पुन पछताएगा ॥

४. दुराचार का उभय लोक में,
फल भयंकर है महा ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
श्री जिनवर गौतम से कहा ॥

६१. गाथा

एयं खु नाणिणो सारं
जं न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समयं चेव
एयावन्तं विजाणिया ।।

सू० श्रु० १ अ० ११ गा० १०

अर्थ

ज्ञानियों के उपदेश का यही सार है कि किसी भी प्राणी की हिंसा न करे । अहिंसा ही शास्त्रसम्मत धर्म है । बस इतना मात्र ही विज्ञान है ।

१. न करे हिंसा किसी की,
ज्ञान का यही सार है।
हिंसा कर्म में रत मनुष्य का,
ज्ञान सब निस्सार है॥

२. विश्व के निखिल धर्मों में,
अहिंसा ही प्रधान है!
अहिंसा का आविष्कार ही,
सुख-मय विज्ञान है॥

३. संसार के हर धर्म की,
अहिंसा है आत्मा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
फिर फिर गौतम से कहा॥

६२. गाथा

दुमपत्तए पंडुयए जहा
निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं
समयं गोयम ! मा पमायए ।।

उत्त० अ० १० गा० १

अर्थ

दिन व रात्रि के अनुक्रम से जैसे वृक्ष के पत्ते पीले हो कर झड़ जाते हैं। ऐसे ही यह मनुष्य जन्म एक दिन आयुष्य की शाखा से गिर जाता है। इसलिए हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद करना उचित नहीं।

१. तरुवर के हरे भरे पत्ते,
क्या अद्भुत शोभा पाते हैं !
वे काल चक्र से बन्धे हुए,
पीले हो कर गिर जाते हैं ।।

२. आयुष्य कर्म की शाखा से,
यह जीवन भी गिर जाता है ।
अनन्त काल के बाद कहीं,
फिर मानव भव में आता है ।

३ इस सुअवसर को पा करके,
न व्यर्थ इसे बरबाद करो ।
अमर साधना के साधक !
हे गौतम ! मत प्रमाद करो ।।

४. प्रमाद ही तो मूल है,
इस जीव के भव चक्र का ।
५ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ।।

६३. गाथा

कुसग्गे जह ओसबिंदुए
थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं
समयं गोयम ! मा पमायए ॥

उत्त० अ० १० गा० २

अर्थ

जैसे कुशाग्र भाग पर लटकते हुए ओस के बिन्दु अल्प जीवी ही होते हैं। ऐसे यह मानव जीवन भी क्षणभंगुर है। अतः गौतम ! समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।

१, जो ओसकण नभ से गिरे,
वे कुशा अंक में ठहर गये ।
जब लगा रवि का ताप उन्हें,
वे सिहर उठे और बिखर गये ॥

२ यह नश्वर जीवन मानव का भी,
पल भर में मिट जाता है ।
अनन्त काल के बाद वहीं,
फिर मानव भव में आता है ॥

३. इस दुर्लभ जीवन को पा कर-
न व्यर्थ इसे बरबाद करो ।
आत्म – शान्ति के साधक,
हे गौतम ! मत प्रमाद करो ॥

४. प्रमाद क्या ? विषय कषाय,
मद, निद्रा विकथा ।
* महावीर ने यह सुवचन,
दिया निज गौतम से कहा ।

६४. गाथा

जणवय सम्मय ठवणा

नामे रूवे पडुच्चेसच्च य ।

ववहार भाव योगे

दसमे ओवम्म सच्चे य ।

प्रज्ञापना सूत्र भाषा-पद

अर्थ

सत्य दस प्रकार का होता है—

जनपद, सम्मत, स्थापना, नाम, रूप, प्रतीत, व्यवहार, भाव, योग और उपमा सत्य ।

१. सत्य के नानात्व का,
है अपेक्षावाद आधार ।
स्याद्वाद अन्वय करे,
मिले सत्य साकार ॥

२. जनपद, सम्मत, स्थापना,
नाम, रूप व्यवहार ।
भाव, योग, उपमा, प्रतीत,
सत्य के दस प्रकार ॥

३. सत्य शाश्वत एक है,
यह रूप नाना धारता ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा ॥

६५ गाथा

कोहे माणे माया लोभे
पेज्जे तहेव दोसे य।
हासे भए अक्खाइय
उवघाए निस्सिया दसमा॥

प्र० भाषा पद

अर्थ

क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हस्य, भय, कल्पित वचन (व्याख्या) तथा उपघात-हिंसा के निमित्त से जिस भाषा का प्रयोग किया जाए वह सत्य प्रतीत होने पर भी असत्य ही कही जाती है।

१. क्रोधी नर, अभिमानी के,
न वचन यथार्थ होते हैं।
इन पर जो विश्वास करे,
वे आंखें भर - भर रोते हैं।

२. कपटी नर और लोभी के,
न निकट सत्य भी आता है।
जो नर इन पर विश्वास करे,
वह जीवन भर दुख पाता है॥

३. जहां राग-द्वेष का शासन हो,
वहां सत्य कभी न वास करे।
ऐसे लोगों के वचनों पर,
न सुज्ञ कभी विश्वास करे॥

४. जो वचन हास्य में कह जाये,
या भय का जिस में वास रहे।
इन चचल दुर्बल वचनों में,
न कभी सत्य - सुवास रहे॥

५. जो वचन कल्पना से निकले,
हो जिसमें हिंसा भाव भरा।
ऐसे वचनों को आगम ने,
नहीं कभी भी सत्य कहा॥

६. जो हितमय हो, मंगलमय हो,
वही वचन है सत्य सदा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

६६. गाथा

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च
पुत्तदारं च बन्धवा ।
चइत्ता णं इमं देहं
गन्तव्वमवसस्स मे ।।

उत्त० अ० १९ गा० १७

अर्थ

प्रत्येक मनुष्य को यह चिन्तन अवश्य करना चाहिये कि मुझे एक दिन भूमि, घर, सोना-चाँदी, पुत्र, स्त्री, सगे-सम्बन्धी यहाँ तक कि इस शरीर तक को भी छोड़कर इस दुनिया से अवश्य जाना पड़ेगा ।

१. सोचना चाहिये मनुज को,
एक दिन वह जायगा।
यह भवन और खेत, उपवन,
काम न कुछ आएगा॥

२. स्वर्ण चान्दी के विपुल,
भण्डार सब रह जायेंगे।
पुत्र, नारी, भाई बान्धव,
बाँट कर सब खायेंगे॥

३. रह जायेंगे बस, यह तेरा,
यह शव जलाने के लिए।
रह जायेगा तू ही अकेला,
दुःख उठाने के लिए॥

४ व्यर्थ ही नर! पाप का,
न भार तू सिर पर उठा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

६७. गाथा

सुवण्ण रुप्पस्स य पव्वया भवे
सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।।

उत्त० अ० ९ गा० ४८

अर्थ

सोने और चाँदी के कैलाश के समान असंख्य पर्वत भी यदि किसी के पास हो जायें तो भी लोभी मनुष्य के लिए वे कुछ भी नहीं क्योंकि इच्छा आकाश की तरह अनन्त होती है।

१. लोभी मनुष्य को जगत में भी,
सुख कभी मिलता नहीं।
मन के सरोवर में कमल,
सन्तोष का खिलता नहीं॥

२. स्वर्ण के और रजत के,
कैलाश जिसके पास हैं।
लोभ के कीड़े वे फिर भी,
वासना के दास हैं॥

३. अनन्त नभ का छोर जैसे,
कोई पा सकता नहीं।
मानव की इच्छा का भी,
ऐसे अन्त आ सकता नहीं॥

४. लोभ ही तो बाप है,
संसार के हर पाप का।
★ महावीर ने यह सुवचन
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

६८. गाथा

तेणे जहा संधि मुहे गहीए
सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।
एवं पया पेच्च इहं च लोए
कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि ॥

उत्त० अ० ४ गा० ३

अर्थ

जैसे चोर सेंध के मुख पर ही पकड़ा जाने पर अपने पापकर्म से दुख उठाता है ऐसे ही पापी जीव इस लोक तथा परलोक में अपने कर्मों का फल भोगता है। कृत कर्म को भोगे विना जीव का छुटकारा नहीं होता ।

१ सन्धि मुख का चोर अपने-
को छुपा सकता नहीं,
दुष्कर्म के परिणाम से
निज को बचा सकता नहीं ॥

२ अज्ञान में पापी नहीं है,
पाप-पथ को छोड़ता ।
इस लोक में परलोक में,
वह पाप का फल भोगता ।

३. इस जीव की मुक्ति नहीं,
भोगे बिना फल कर्म का ।
★ महावीर ने यह सुवचन,
निज शिष्य गौतम से कहा ॥

६९. गाथा

सरीरमाहु नावत्ति
जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो
जं तरंति महेसिणो ॥

उत्त० अ० २३ गा० ७३

अर्थ

शरीर को 'नावा' और जीव को 'नाविक' कहा गया है। इस संसार को समुद्र कहा है। इसे केवल महर्षि पुरुष ही पार कर सकते हैं।

१. संसार है सागर तो,
तन नौका समान है।
जो जीव है नाविक बना,
कितना महान है!!

२ जो है महर्षि पुरुष वह,
उस पार जाता है।
मोक्ष के तीरों पे वह,
आनन्द पाता है॥

३. इस नाव को संसार के,
न मोह-भंवर में तू फंसा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
किस लिए गौतम से कहा॥

७०. गाथा

तवो जोई जीवो जोइठाणं
जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।
कम्मेहा संजमजोगसंती
होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥

उत्त० अ० १२ गा० ४४

अर्थ

तप अग्नि है और यह जीव अग्नि-कुण्ड है। मन वचन तथा काया का योग ही स्रुव है। यह शरीर कारिषांग-यज्ञ की सामग्री है। कर्म ही ईन्धन है। संयम ही शान्ति-पाठ है। जिसे ऋषियों ने प्रशस्त कहा है। ऐसे होम से मैं यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ।

१. इस जीव अग्नि - कुण्ड में,
तू तप की अग्नि ले जला।
इस मन, वचन व काया के,
त्रियोग को तू स्रुव बना॥

२ इस शरीर - कारिषांग में,
तू कर्म - ईन्धन को जला।
संयम के शांति - पाठ से,
तू आत्मा को शुद्ध बना॥

३. यह स्वरूप वर्णन है किया,
जिनवर ने आत्म-यज्ञ का।
★ महावीर ने यह सुवचन,
निज निज जीवन से कहा।

७१. गाथा

धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्थे
अणाविले अत्तपसन्नलेसे ।
जहिं सिणाओ विमलो विसुद्धो
सुसीइभूओ पजहामि दोसं ॥

उत्त० अ० १२ गा० ४६

अर्थ

धर्म रूपी जलाशय है । ब्रह्मचर्य शान्ति तीर्थ है । कालुष्य रहित आत्मा प्रसन्न लेश्या है । ऐसे जलाशय में स्नान करने से आत्मा निर्मल और विशुद्ध हो जाता है । इस तरह मैं अत्यन्त शीतल हो कर कषाय आदि दोषों का परित्याग करता हूँ ।

१. धर्म है मेरा सरोवर,
ब्रह्मचर्य शान्ति घाट है।
दोष रहित जीव में,
शुभ भाव ही सम्राट् है॥

२ इस जलाशय में नहा कर,
आत्मा निर्मल हुआ।
मैं परम शीतल हो गया,
जब दूर सब कलिमल हुआ॥

३. धर्म के शीतल सरोवर में–
हो तू निशदिन नहा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
निज शिष्य शीतल से कहा॥

७२. गाथा

भावणा जोग सुद्धप्पा
जले णावा व आहिया ।
नावा व तीर सम्पन्ना
सव्व दुक्खा तिउट्टइ ॥

सू० श्रु० १ अ० १५ गा० ५

अर्थ

जैसे नौका किनारे पर पहुँच कर प्रत्येक संकट से पार हो जाती है ऐसे ही साधक जिसकी आत्मा भावना योग से शुद्ध होती है, वह सब कर्मों से मुक्त होकर दुखों से रहित हो जाता है ।

१. भावना - योग से यह आत्मा,
शुद्धि को पाता है।
इस संसार सागर की,
वही नौका कहाता है !!

२. किनारे से लगी नावा,
विपद से पार जाती है।
नहीं तुफान के न भंवर के,
चक्कर में आती है॥

३. मोक्ष के तीर पर यह,
आत्मा आनन्द पाता है।
नहीं फिर सुख के व दुख के,
बन्धन में आता है॥

४. तू बाह्य चिन्तन छोड़—
आत्म - भावना में मन लगा।
★ महावीर ने यह सुवचन,
प्रिय शिष्य गौतम से कहा॥

जितने वर्ष वीर प्रभु के,
इस धरती पर चरण रहे।
महावीर की वाणी से,
मैंने उतने ही सूक्त कहे ॥

पारिभाषिक तथा कठिन शब्दों के अर्थ

निर्जरा=कर्मों का जीव से अलग हो जाना ।

अकाम=परवशता में बिना इच्छा के निर्जरा । कष्ट सहने से होने वाला कर्मों का क्षय ।

दुर्जय=जिसे जीतना कठिन हो ।

सुभट=योधा ।

देदीप्यमान=प्रकाशमान ।

श्रुतज्ञान=शास्त्र का ज्ञान ।

असम्बद्ध प्रलापी=बिना सिर पैर की बातें करने वाला ।

प्रमाद=विषय, कषाय, निद्रा, मद, तथा विकथा को प्रमाद कहते हैं ।

कषाय=क्रोध, मान, कपट तथा लोभ को कषाय कहते हैं ।

विकथा=काम-क्रोध तथा मोह को बढ़ाने वाली बातें करना ही विकथा है ।

लोलुपी=भोगों तथा रसों में आसक्त व्यक्ति ।

अरण्य=वन ।

भारंड पक्षी=एक ऐसा पक्षी जिस के दो मुख होते हैं । प्रमाद वश दूसरे मुख से खाने पर उस की मृत्यु हो जाती है ।

[illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] ।

[illegible] [illegible] ।

हस्तगत=प्राप्त ।
शास्त्रसम्मत=शास्त्र द्वारा माना हुआ ।
कुशाग्र=कुशा का अग्र भाग ।
क्षणभंगुर=शीघ्र नष्ट होने वाला ।
उपघात=हिंसा ।
त्रसजीव=वे जीव जिन का दुख सुख व्यक्त होता है ।
द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों तक सब जीव त्रस कहलाते हैं। ये सब जीव हिलते-चलते हुए नजर आते हैं ।
स्थावरजीव=वे जीव जिनका दुख-सुख अव्यक्त होता है ।
पृथिवी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति ये सब जीव स्थावर कहे जाते हैं। ये हिलते चलते हुए दृष्टिगोचर नहीं होते ।
चीवर=वस्त्र ।
संघाटिका=गोदड़ी ।
उद्भूत= कट ।
शु: =उज्जवल ।
दृष्ट=देखा हुआ ।
परिमित=थोड़ा ।
असन्दिग्ध=सन्देह रहित ।
अनुभूत=अनुभव में आया हुआ ।
वाचाल्ता=अधिक बोलना ।
उद्विग्नकारक=मन को व्याकुलता देने वाला ।
ऊर्ध्व लोक=ऊपर का लोक-स्वर्ग ।
तिर्यग लोक=मर्त्य लोक । मध्यलोक ।

असंविभागी=चीज को न बाँटने वाला ।

अप्रीतिकर=अप्रिय ।

वल्कल=वृक्ष की छाल ।

समता=सब पर समभाव रखना ।

आयुष्य=आयु ।

अधोलोक=नीचे का लोक-नरक आदि ।

अनिष्ट=अहित ।

जनपद सत्य=प्रत्येक देश की मान्य भाषा में बोलना ।

सम्मत=जो शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है उसे उसी तरह मान्य कर के बोलना ।

स्थापना=किसी भी वस्तु या व्यक्ति की आकृति आदि को उसी रूप में कहना ।

नाम=गुण रहित होने पर भी किसी वस्तु व व्यक्ति को उस नाम से पुकारना ।

रूप=बाह्य रूप या वेष को देख कर उसे वैसे ही कहना ।

प्रतीत=किसी वस्तु या व्यक्ति को अपेक्षा से अलग अलग कहना ।

वैतरणी नदी=नरक की एक नदी। (एक पौराणिक नदी पृथ्वी और यमलोक के बीच में वहती है। जिस का जल गरम है। पापी इसमें वहुत दिनों तक दुख भोग करते हैं।)

कामधेनु=स्वर्ग की एक गाय।

नन्दनवन=इन्द्र का उद्यान।

शठता=दुष्टता।

परिभ्रमण=घूमना।

विजेता=जीतने वाला।

कारिपंग=यज्ञ की सामाग्री।

जलाशय=तालाव।

प्रसन्न लेश्या=मन का शुभ भाव।